Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
Vol. 11, Issue 1 | May 2023 - October 2023 | pp. 7-16

ब्राह्मण ग्रंथों में उल्लेखित यज्ञ की अवधारणा में निहित पर्यावरण चेतना

डॉ. भावना पारीक

सह आचार्य, इतिहास विभाग

बी.एन.डी. राजकीय कला महाविद्यालय, चिमनपुरा, शाहपुरा, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

वैदिक साहित्य में यज्ञ को श्रेष्ठतम कर्म कहा गया है। यज्ञ वैदिक दर्शन का अभिन्न अंग है। जिसका उद्देश्य सृष्टि के पंच तत्वों को संवर्धित करना व संतुलित करना था। सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, वरुण आदि शक्तियों से संपर्क स्थापित करने के लिये तत्त्ववेत्ता ऋषियों ने यज्ञ का आविष्कार किया। यज्ञ में वेद मंत्रों के उच्चारण के साथ अग्नि में आहुतियाँ डालते हैं उस समय शब्द शक्ति भावनाओं के साथ पदार्थ को सूक्ष्म बनाकर ऊर्ध्वलोक तक पहुँचाती है। यज्ञ के माध्यम से वैदिक मनुष्य ने प्रकृति के देव तत्वों तथा अन्य भूत प्राणियों को संतुष्ट करने तथा नवीन ऊर्जा देकर पर्यावरण में संतुलन बनाए रखने का प्रयास किया। यज्ञों के माध्यम से प्राकृतिक पर्यावरण को संपुष्ट करने के साथ ही मानव के शारीरिक मानसिक व नैतिक स्वास्थ्य को भी सुदृढ़ व समृद्ध करने का प्रयत्न किया गया। वैज्ञानिक शोधों से निष्कर्ष निकाला गया है कि यज्ञ पर्यावरण के संवर्धन व संरक्षण करने में ही उपादेय नहीं हैं वरन प्रदूषण का निवारण करने में भी समर्थ हैं। 'यज्ञ क्रिया प्राचीन काल में ही नहीं वरन वर्तमान में भी पर्यावरण हेतु उपादेय है' इसी विचार से संबंधित सभी पक्षों को प्रस्तुत आलेख में समाविष्ट करने का प्रयास किया गया है।

संकेताक्षर—*ब्राह्मण ग्रंथ, पर्यावरण, घटक, यज्ञ, सृष्टि, अग्निहोत्र, बलि, पंच महायज्ञ*

प्रस्तावना

यज्ञों व कर्मकाण्डों के विधान व उनकी क्रियाओं की विस्तृत व्याख्या हेतु ही ब्राह्मण ग्रंथों की रचना हुई। इन ग्रंथों में यज्ञों के विषय का भली भाँति प्रतिपादन किया गया है। प्रत्येक वेद के अपने-अपने ब्राह्मण रचे गये—ऋग्वेद के ऐतरेय, शांखायन या कौषीतकि ब्राह्मण, शुक्ल यजुर्वेद का शतपथ ब्राह्मण व कृष्ण यजुर्वेद हेतु तैत्तरीय ब्राह्मण, सामवेद के पंचविष, षडविंष व जैमिनीय इत्यादि ब्राह्मण और अथर्ववेद हेतु गोपथ ब्राह्मण।

जब वेदों का अर्थ दुरूह होने लगा तब उसके अर्थ को सरल एवं स्पष्ट भाषा में विवृत करने हेतु ब्राह्मण ग्रंथों का प्रणयन किया गया। 'ब्रह्म' का शब्दार्थ यज्ञ होता है अतः ब्राह्मण ग्रंथों में हमें यज्ञों की वैज्ञानिक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक मीमांसा मिलती है। यज्ञ वैदिक दर्शन का अभिन्न अंग है जिसके तीन आयाम हैं—देवत्व (परिष्कृत व्यक्तित्व) सामूहिकता और दान (सामाजिक कल्याण)।[1] अर्थात् कल्याण के दिव्य उद्देश्य हेतु संगठित तरीके से योगदान देना। राष्ट्र, धर्म और मानवता के रक्षार्थ शुद्ध और निःस्वार्थ ऊर्जाओं को एकत्र करना तथा मानव और इस ब्रह्माण्ड की सभी प्रजातियों के कल्याण हेतु अपने अधिकार के एक भाग का त्याग करना ही यज्ञ का लक्ष्य है। यह त्याग हमें श्रौत यज्ञ (सार्वजनिक और राजकीय यज्ञ) व पाक यज्ञ (गृह में होने वाले यज्ञ) दोनों स्थानों पर दृष्टव्य होता है। माना गया कि देव सृष्टि के संचालक व नियामक तत्व हैं जिनके सहयोग से सृष्टि विकासमान है। इन देवतत्वों के संतुष्ट रहने पर पर्यावरण में संतुलन बना रहता है। ये देव, असुर तत्वों को जो पर्यावरण का विध्वंस करते हैं, को पृथ्वी से भगाते हैं।[2] देव व असुर दोनों प्रजापति की सन्तान हैं किंतु असुर घातक तत्व हैं जो सृष्टि को हानि पहुँचाने का कार्य करते हैं और देव रचनात्मक हैं जो प्राण व ज्योति द्वारा पर्यावरण में संतुलन बनाए रखते हैं। सूर्य की रश्मियाँ गन्दगी को नष्ट

कर पवित्र करने वाली है[3] तथा अग्नि हानिकारक जन्तुओं को नष्ट कर देता है।[4]

स्पष्ट है कि सृष्टि की व्यवस्था मनुष्य और प्रकृति के सहयोग पर निर्भर करती है जिसमें मनुष्य की भूमिका सक्रिय और प्रकृति की भूमिका उस क्रिया से परिवर्तन उपादान की होती है। प्रकृति की ओर वैदिक मानव की दृष्टि यज्ञात्मक थी, न कि संघर्ष, वशीकार अथवा भोग मात्र की। प्रकृति की शक्तियों को देवात्मक माना गया है न कि जड़ यंत्रात्मक। मनुष्य यज्ञ के द्वारा उनकी उपासना करता है और उनकी कृपा से सहज जीवन के साधन लाभ करता है। श्रद्धा और विधि से प्रकृति की अधिष्ठात्री देव शक्तियों के प्रति द्रव्य-पूर्वक आत्मनिवेदन से मनुष्य धन-धान्य से समृद्ध होता है।

ब्राह्मण ग्रंथों में श्रेष्ठतम कर्म को यज्ञ कहा गया है।[5] यज्ञ में लोक कल्याण की भावना विशेष रूप से निहित रहती है।[6] यज्ञ के द्वारा हम पदार्थों की कामना करते हैं, जो मानव जीवन के लिये आवश्यक है। कृषि कार्य में जब हम एक बीज का वपन करते हैं तो फलस्वरूप सहस्र गुणा प्राप्त करते हैं। सूर्य समुद्र से वाष्प द्वारा जल ग्रहण करता है जो सहस्र गुनी वृष्टि द्वारा वसुन्धरा को आप्यापित कर धन-धान्यादि से परिपूर्ण करता है। इसी प्रकार जब हम देवों को हवि आदि द्वारा पुष्ट करते हैं तब वे हमारी कामनाओं को पूर्ण करते हैं और काम्य वस्तुएँ प्रदान करते हैं।[7] परमात्मा अपने आपको दिव्य शक्तियों के रूप में प्रकट करता है। ये शक्तियाँ ही संसार के नियम, नियंत्रण तथा पालन-पोषण में सहायक होती हैं। मनुष्य की शक्ति और पहुँच अत्यन्त सीमित है। स्थूल रूप से वह इन दिव्य शक्तियों से सम्पर्क स्थापित नहीं कर सकता। सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, वरुण आदि शक्तियों से संपर्क स्थापित करने के लिये तत्त्ववेत्ता ऋषियों ने यज्ञ का आविष्कार किया। यज्ञ में वेद मंत्रों के उच्चारण के साथ अग्नि में आहुतियाँ डालते हैं उस समय शब्द शक्ति भावनाओं के साथ पदार्थ को सूक्ष्म बनाकर ऊर्ध्वलोक तक पहुँचाती है।

यज्ञ से जो जिस वस्तु की प्राप्ति की इच्छा करता है उसे वहीं अभीष्ट प्राप्त होता है।[8] सृष्टि की स्थिति व संचालन में यज्ञ की महत्वपूर्ण भूमिका को दृष्टगत करते हुए ऋषियों ने यज्ञ को ईश्वर रूप माना है।[9] गीता में यज्ञ की ईश्वर रूपता को सिद्ध करते हुए कहा गया है कि सभी प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न की उत्पत्ति वृष्टि से होती है, वृष्टि यज्ञ से होती है और यज्ञ विहित कर्मों से उत्पन्न होता है। कर्म समुदाय वेद से उत्पन्न और वेद अविनाशी परमात्मा से उत्पन्न हुआ है।[10] यज्ञ इस संसार में साक्षात् ऐश्वर्य रूप, पापों, रोगों आदि का शोधक नाशक परलोक में स्वर्ग प्राप्ति का साधन एवं अमरत्व का प्रापक है।[11] जीवन में पर्यावरण के लिये उपयोगी जो भी श्रेष्ठ कार्य किये जाते हैं वे यज्ञ है। पर्यावरण को सुरक्षित व संतुलित बनाये रखना एक श्रेष्ठतम कर्म है तथा उसमें यज्ञ की महत्वपूर्ण भूमिका है। यज्ञ में वेदमंत्रों का उच्चारण, विशेष प्रकार की समिधायें, विशिष्ट हवि शाकल्य, चरू, पुरोडाष और भावनाओं का प्रवाह आदि अनेक सूक्ष्म प्रक्रियाओं से एक प्रचण्ड अदृष्ट वातावरण बनता है। इसकी शक्ति से यज्ञकर्त्ताओं को ही नहीं वरन समस्त प्राकृतिक एवं सामाजिक पर्यावरण को लाभ होता है।

सम्पूर्ण विश्व के उत्पादक दिव्य तत्त्व यज्ञ से ही उत्पन्न हुए हैं।[12] शतपथ की विचारधारा के अनुसार यज्ञ का द्विविध स्वरूप है—प्राकृत एवं कृत्रिम। प्राकृत यज्ञ प्रकृति में निरन्तर चल रहा है। उसी के अनुसरण पर कृत्रिम यज्ञ विहित हुआ। कृत्रिम यज्ञ हेतु निरूक्त[13] कहता है—यजनार्थक होने के कारण फल विशेष की कामना के लिए किये जाने के कारण, यजुमंत्रों से क्लिन्न होने के कारण बहुकृष्णाजिन सम्पन्न होने के कारण तथा यजुमंत्रों द्वारा सफल होने के कारण यज्ञ कहा जाता है। सृष्टि यज्ञ का सादृश्य विधान भी दर्शनीय है। "संवत्सर ही यजमान है, ऋतुएँ यज्ञ करवाती हैं, वसन्त अग्नीध्र है अतः वसन्त में दावाग्नि फैलती है। वह अग्निरूप हैं। ग्रीष्म ही अध्वर्यु है क्योंकि वह तप्त सा होता है। अध्वर्यु भी तप्त की तरह निष्क्रमण करता है। वर्षा उद्गाता है क्योंकि जोर से (स्वर करता हुआ) बरसता है। साम के समान ही उपशब्द होता है। शरद् ही ब्रह्मा है क्योंकि शस्य उसी से पकता है। प्रजा ब्रह्मवती है यह कहा जाता है। हेमन्त 'होता' है। वषट्कृत की तरह इसमें पशु कष्ट पाते हैं। ये ही देवता यजन कराते हैं।"[14]

वैदिक यज्ञ दो प्रकार के होते हैं—एक श्रौत और दूसरा गृह्य। श्रौत यज्ञ का विवरण श्रौतसूत्रों में प्राप्त होता है और यथा विधि दीक्षित होने पर ही मनुष्य इसका अधिकारी होता है। गृह्य यज्ञों का वर्णन गृह्यसूत्रों में है और केवल उपनीत होने पर ही मनुष्य इसका अधिकारी हो जाता है। गोपथ ब्राह्मण के अनुसार यज्ञ इक्कीस प्रकार के हैं।[15] ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार निम्न पाँच प्रकार के यज्ञ प्रमुख हैं—अग्निहोत्र, दर्षपूर्णमास, चातुर्मास, पशु तथा सोम।[16] विभिन्न कामनाओं के लिये अलग-अलग यज्ञों का विधान है।

प्रत्येक गृहस्थ के यहाँ चूल्हा, चक्की, बुहारी, ऊखल और जलपान—वे पाँच प्रकार के हिंसा के स्थान हैं। इनसे होने वाली हिंसा की निष्कृति के लिये महर्षियों ने गृहस्थों के लिये प्रतिदिन पंचमहायज्ञ करने का विधान कहा हैं।[17] पंच महायज्ञ निम्न प्रकार से हैं—देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ व मनुष्य यज्ञ।[18] मनु[19] के अनुसार—वेदों के पठन-पाठन को ब्रह्मयज्ञ कहते है। अपने इष्टदेव की उपासना के लिये परब्रह्म परमात्मा के निमित्त अग्नि में किये हुए हवन को 'देवयज्ञ' कहते हैं। कृमि, कीट, पतंग, पशु और पक्षी आदि की सेवा को 'भूतयज्ञ' कहते हैं। अर्यमादि नित्य पितरों की तथा परलोकगामी नैमित्तिक पितरों को पिण्ड प्रदानादि से किये जाने वाले सेवा रूप यज्ञ को पितृयज्ञ कहते है। क्षुधा पीड़ित मनुष्य के घर आ जाने पर उसकी भोजनादि से की जाने वाली सेवा रूप यज्ञ को मनुष्य यज्ञ कहते हैं। इस प्रकार प्राणीमात्र के लिये कल्याणकारी समस्त शुभ कर्म यज्ञ हैं।

पर्यावरण चेतना में यज्ञ की उपादेयता

पर्यावरण व परोपकार की दृष्टि से विभिन्न यज्ञ महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी है—

- आरोग्य तथा विभिन्न रोगों के निवारणार्थ 'भेषज्ययज्ञ' किया जाना चाहिए।
- वर्षा के नियंत्रण तथा इच्छानुसार वर्षा हेतु 'अवर्षण यज्ञ' किया जाना चाहिए।
- कृषि, पशु, औषधि आदि के वर्धन हेतु तथा नई उर्वरा भूमि को प्राप्त करने के लिये 'गोमेधयज्ञ' किया जाना चाहिए।
- पंचमहायज्ञ द्वारा मनुष्य योनि के अतिरिक्त अन्य सभी योनियों यथा पशु-पक्षियों, कीट पतंगों आदि को आहार पहुँचाना चाहिए चूँकि पारिस्थितिकी संतुलन हेतु प्रत्येक प्रजाति महत्त्वपूर्ण है।
- अग्निहोत्र से वायुमण्डल का शुद्धिकरण किया जाना चाहिए।

मानव की मनोवृत्ति को निस्वार्थ तथा सर्वकल्याणकारी बनाने के लिए और 'इदं न मम' की भावना जाग्रत करने हेतु उपासना यज्ञ भी महत्वपूर्ण है।

मनुष्य का जीवन निश्चित ही एक यज्ञ है।[20] यदि मनुष्य अपना जीवन शास्त्रोक्त विधि से व्यतीत करे तो उसका जीवन यज्ञमय बन जाता है। मानव की खेती, वृष्टि, विजय और उन्नति सब यज्ञ से बढ़ते हैं।[21] यज्ञ करने से और वेदमंत्रों के उच्चारण करने से वायुमण्डल में परिवर्तन होता है जिससे समस्त विश्व में धर्मचक्र चलने लगता है।[22] तात्पर्य है कि यज्ञ के प्रभाव से मानव पापों से छूटकर अमृतत्त्व को पा सकता है। जो यज्ञ करता है वह पाप को मारता है।[23] जो विद्वान् अग्निहोत्र यज्ञ करता है वह सारे पापों से छूट जाता है,[24] जैसे सांप अपनी पुरानी केंचुली से छूट जाता है तथा इषीका मूंज से छूट जाती है। उसी प्रकार शाकला से हवन करने वाला व्यक्ति समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।[25]

'देवो भूत्वा देवं यजेतृं' सिद्धांतानुसार मानव यज्ञ से पूर्व अपने आपको पवित्र बनावे। यज्ञ में पवित्रता के लिये सत्याचरण की प्रतिज्ञा करे।[26] मनुस्मृति में कहा गया है यज्ञ करने के बाद मिथ्या भाषण नहीं करना चाहिए क्योंकि मिथ्या भाषण से यज्ञ का फल नष्ट हो जाता है।[27] यज्ञ हेतु किये गये व्रत एवं नियमों के पालन से यजमान रोग एवं पाप से मुक्त होता है।[28] आध्यात्मिक एवं भौतिक ऐश्वर्य की प्राप्ति अहिंसा के वातावरण में ही हो सकती है अतः ऋषियों की कामना थी कि—जो सब पशु भाव है वह यज्ञ द्वारा समाप्त हो जाये और जो सम्पत्ति (रयि) है वह रहे।[29] निष्कर्षतः यजमान के लिये यज्ञानुष्ठानों में धन व्यय करने के अतिरिक्त अपनी देह एवं मन को भी संयमित रखना आवश्यक था।[30] व्यष्टि व समष्टि के विकास तथा पर्यावरण के उन्नयन के लिये यज्ञ आवश्यक है क्योंकि यज्ञ इस भवसागर से पार करने वाली नौका है, जो इस पर नहीं चढ़ते वे पापी होकर महा दुःखसागर में गिरते हैं।[31] वैदिक साहित्य में 'जीवेम् शरदः शतम्' का उद्घोष सुनायी देता है। सौ वर्ष की आयु का रहस्य है अच्छा स्वास्थ्य। अच्छा स्वास्थ्य शुद्ध पर्यावरण से सम्भव है और शुद्ध पर्यावरण बनता है विधिपूर्वक किये गये यज्ञ से। ऐतरेय ब्राह्मण[32] कहता है कि यज्ञ जनता के लिये किया जाता है। प्रजा के हित में होने से ही शतपथ ब्राह्मण ने इसे श्रेष्ठतम कर्म कहा है। सृष्टि यज्ञ और कर्मकाण्डीय यज्ञ परस्पर पूरक हैं। दोनों एक-दूसरे का संवर्धन और संरक्षण करते हैं। सृष्टि यज्ञ के यथावत् सम्पन्न होने पर ही पर्यावरण के समस्त घटक तथा धर्म कार्य निष्पादित कर पाते हैं। यथा नदियाँ बहती हैं, वायु बहती है और पक्षी उड़ते हैं।

ISSN 2348-3857

यज्ञ में आहुति[33] रूप में चार पदार्थ डाले जाते हैं—

- सुगन्धित—कस्तूरी, केशर, अगर, श्वेतचन्दन, इलायची, जायफल।
- मिष्ठ—शक्कर, शहद, छुआरे, किशमिश, दार आदि।
- रोगनाशक—सोमलता, गिलोय आदि औषधियाँ।
- पुष्टिकारक—घृत, दूध, फल, कन्द, चावल, गेहूँ, उड़द आदि।

इन परिशोधक औषधियों को जब अग्नि में समर्पित किया जाता है तो निम्नलिखित लाभ दृष्टिगत होते हैं—

औषधियों को अग्नि में समर्पित किये जाने के उपरान्त वायुमण्डल उपयोगी गैसीय वातावरण से आच्छादित हो जाता है तथा मेघस्थ जल को मेध्यता प्रदान करता है। मनुस्मृति में भी कहा गया है कि अग्नि में विधि विधान के साथ दी गई आहुतियाँ सूर्यदेव को प्राप्त होती हैं उससे वृष्टि होती है, वृष्टि से अन्न होता है और उससे प्रजा की उत्पत्ति होती है।[34]

वैदिक साहित्य में निरन्तर अन्न के अधिक उत्पादन[35] की कामना की गई है। अन्न को औषध[36] मानते हुए उसकी निन्दा से बचने को कहा गया है। कृषि मनुष्य की अनिवार्य आवश्यकताओं में से एक है, क्योंकि अन्न ही प्राणियों का प्राण है।[37] अपने जीवन की रक्षा के लिये कृषि कार्य को हम जितना अधिक विद्या, विज्ञान और विवेक के साथ करेंगे उतना ही अधिक अन्न प्राप्त करेंगे। यज्ञ में हवियों के प्रयोग से उत्पन्न औषधीय वायु, दूषित वायु को गुणकारी वायु में तथा मेघस्थ जलों को मेध्य जल में परिवर्तित कर देती है, जिससे उत्पन्न दिव्य वातावरण में फसलें अधिक मात्रा तथा गुणवत्ता से युक्त होती हैं। यज्ञ से निकली गैस मिट्टी के हानिकारक कीटाणुओं को मार देती हैं जिनसे पृथ्वी की उर्वरा शक्ति स्वयं ही बढ़ जाती है।[38] यज्ञ के धुएँ में उपस्थित बी एसिटिक एसिड पौधे हेतु गुणकारी है तथा फसल में लगने वाले कीटाणुओं को मारता है। मंत्र ध्वनि का प्रभाव भी स्थावर-जंगम जगत् पर विशेष होता है, अतः बीज वपन कार्य के समय वेदवाणी तथा आहुति आदि का प्रयोग करना चाहिए।[39]

यज्ञ विभिन्न रोगों के उपचार में परमोपयोगी है।[40] यज्ञ में घृत शाकल्य, की आहुतियाँ तथा औषधि वनस्पति विशेष की समिधाएँ डाली जाती है जिनसे रोग कीटाणु व कृमि नष्ट होते हैं। चातुर्मास यज्ञों को भैषज्य यज्ञ भी कहा गया है। इनका अनुष्ठान ऋतु सन्धियों में किया जाता था। इनके करने से ऋतु परिवर्तन के विकार दूर हो जाते हैं।[41] पाश्चात्य वैज्ञानिकों में फ्रांस के विज्ञानवेत्ता ट्रिलवर्ट[42] व डॉ. हैफकिन[43] ने यज्ञ के प्रभाव को माना। जापान देश के मोटोहामा महोदय ने अग्निहोत्र यज्ञ का, शरीर के विद्युत क्षेत्र पर क्या प्रभाव होता है इसका परीक्षण किया और पाया कि यज्ञ के पश्चात् अनाहतचक्र व मानसिक शक्ति में स्फूर्ति आई।[44] यज्ञावषेष प्राप्त प्रत्येक किलोग्राम भस्म में निम्नलिखित मात्रा में खनिज लवण उपस्थित पाये गये।[45]

फोस्फोरस	-	4076 मि.ग्रा.
पोटेशियम	-	3404 मि.ग्रा.
कैल्शियम	-	7822 मि.ग्रा.
मैग्नेशियम	-	6424 मि.ग्रा.
नाइट्रोजन	-	32 मि.ग्रा.
क्वाइस्पार	-	2 प्रतिशत भार

इससे सिद्ध होता है कि यज्ञ भस्म में औषधीय गुण विद्यमान है।

यज्ञ, पर्यावरण के संरक्षण व संवर्धन हेतु अत्यन्त उपयोगी है। यज्ञ से न केवल वातावरण शुद्ध बनता है अपितु यज्ञ से सुगन्धित द्रव्यों का धुआँ जब अन्तरिक्ष में व्याप्त होता है तो वह वहाँ स्थित प्रदूषण को समाप्त कर परिमार्जन करता है। अग्निहोत्र यज्ञों से ही वायु, वृष्टि और जल की शुद्धि द्वारा आरोग्यता की प्राप्ति होने के साथ ही धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की सिद्धि होती है।[46] अग्निहोत्र की मन्द अग्निक्रिया, मिथाइल अल्कोहल, इथाइल अल्कोहल, फार्माल्डिहाइड, ऐसीटाल्डिहाइड गैस फार्मिक व ऐसोटिक अम्ल आदि का उत्पादन करती हैं जिसका विसरण परिवेष की सूर्य प्रकाश की पराबैंगनी किरणों व अन्य लघु तरंगों से क्रिया करता हैं तथा हानिकारक को अवशोषित कर लेता हैं।[47] इसकी उष्णता वायुभार को अल्प करती है जिसकी ऊर्जा पादप कोशिकाओं के उत्पादन को बढ़ाने में सहायक होती है। अग्निहोत्र वनस्पति का वर्धन करने वाला तथा ओजोन का संतुलन बनाने वाला है। 1994 के वर्ष में गोरखपुर, शान्तिकुंज हरिद्वार द्वारा संचालित व सम्पादित अश्वमेध महायज्ञ में उत्तरप्रदेष प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के वैज्ञानिकों ने विविध उपकरणों की सहायता से प्रदूषण परिमाण का अध्ययन किया, जिसमें पाया—[48]

प्रति 100 लीटर जल में उपस्थित सूक्ष्म जीवों की संख्या

यज्ञ से पूर्व	4500
यज्ञ सम्पादन के समय	2470
यज्ञ के उपरान्त	1250

प्रति 100 मिलिग्राम वायुमण्डल में SO_2 एवं NO_2

	गन्धकाम्ल वाष्प (SO_2)	नाइट्रोजन वाष्प (NO_2)
यज्ञ से पूर्व	3.36	1.16
यज्ञ सम्पादन के समय	2.82	1.14
यज्ञ के उपरान्त	0.80	1.02

वैज्ञानिकों ने इन आँकड़ों से निष्कर्ष निकाला कि यज्ञ द्वारा प्रदूषण जन्य रोगों से मुक्ति पाना सम्भव है। यज्ञ वातावरण की प्राणशक्ति को बढ़ाने वाला है। स्पष्ट है कि यज्ञ पर्यावरण संरक्षण और संवर्धन करने में ही समर्थ नहीं अपितु प्रदूषण का निवारण करने में भी समर्थ है। यज्ञ सदैव कल्याणकारक है। ब्राह्मण ग्रंथों में पर्यावरण के विभिन्न घटकों के साथ मनुष्य की तादात्म्य व सामंजस्य पूर्ण दृष्टि भी दृष्टिगत होती हैं। बृहदारण्यकोपनिषद् से ज्ञात होता है कि प्रजापति ने स्वयं को तीन रूपों में विभक्त किया अग्नि, वायु और आदित्य में।[49] ये तीनों देव अन्य देवों के हृदय हैं।[50] अग्नि, वायु और सूर्य तीनों ही प्राणवान् है।[51] अग्नि पिण्ड का निर्माण करता है, अतः विश्वकर्मा है।[52] यह परम पुरुष के मुख से उत्पन्न हुआ है इसलिए मनुष्य के मुख में वाणी के रूप में विद्यमान है।[53] पर्यावरण के विभिन्न घटकों में व्याप्त अग्नियाँ एक दूसरे को जानती हैं। अर्थात् विभिन्न घटक एक दूसरे के साथ तालमेल से कार्य करते हैं। तीन लोक में स्थापित 'त्रिवृत्' अग्नि के स्थूल रूप से तीन भेद हैं—आमाद (भोजन बनाने की), क्रव्याद (मृतदेह जलाने की) तथा देवयाज (यज्ञ की अग्नि)।[54] वायु भी 'विश्वज्योति त्रिवर्ग' का सदस्य है। शतपथ ब्राह्मण[55] वायु को अन्तरिक्ष में बहने वाली (श्वसिति) कहता है। वायु को विश्वकर्मा भी कहा गया[56], यह प्रजापति का अर्द्धाङ्ग है।[57] यह विश्व प्रपंच प्राण से ही बना है।[58] प्राणों का वायु से विशेष सम्बन्ध है।[59] वायु ही पुरुष के अन्दर जाकर प्राण बनता है—सोऽयं (वायुः) पुरुषेऽन्ते प्रविष्टस्त्रिधा विहितः प्राण उदानो व्यान इति।[60] वायु अन्तरिक्ष में सदा उपस्थित रहता है।[61] गोपथ ब्राह्मण के अनुसार जहाँ पर वायु है वहाँ अन्तरिक्ष है और जहाँ पर अन्तरिक्ष है वहाँ वायु है, यह दो उत्पत्ति स्थान और एक जोड़ा है।[62] वायु में पवित्रीकरण का गुण विद्यमान है। तभी यज्ञ की धूम से पुष्टिवर्धन कर वह मनुष्यों, पादपों तथा मृदा आदि को पवित्र बना कर पुष्ट कर देता है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार वायु समस्त ऋतु का कारक है।[63] अतः वेदों में कहा गया वायु को क्षति पहुँचाने पर वह भी सबको क्षति पहुँचा सकता है।[64] इस विश्वज्योति त्रिवर्ग का तीसरा घटक आदित्य है। अदिति का पुत्र होने से आदित्य तथा प्रेरक का काम करने पर सूर्य देव ही सविता कहलाते हैं।[65] सूर्य की किरणें सब कुछ पवित्र बना देती है तथा इसकी रश्मियाँ ही विश्वदेवता है।[66] सूर्य सम्पूर्ण ऋतुओं का प्रतीक है, इसका उदय बसन्त, संगव ग्रीष्म, मध्यदिन वर्षा, अपराह्न शरद् तथा अस्तकालीन स्थिति ही हेमन्त ऋतु है।[67] तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा गया है कि सुन्दर वीर्य वाला सूर्य रक्षा करता है, यही सूर्य का सूर्यत्व है।[68] इसे चक्षु में स्थित कहा गया।[69] सूर्य किरणें रोग निवारक[70], तमस नाषक[71] तथा शस्योत्पादक[72] हैं। आधुनिक विज्ञान भी कहता है कि पेड़-पौधों की फोटोसिन्थेसिस, श्वसन, ऊष्माग्रहण, बीजों में अंकुरण एवं विकास आदि सूर्य से प्रभावित होता है। पर्यावरण के महत्त्वपूर्ण घटक जल में अमृतत्त्व स्वीकार किया गया।[73] इसमें सब देवताओं का निवास माना गया।[74] वैदिक साहित्य में "आपः" के सम्बन्ध में माता वाचक शब्द प्रयुक्त होते हैं।[75] जल का सर्वोत्तम रूप वर्षा को माना गया।[76] वर्षा होने का कारण द्यावापृथिवी का सम्मिलन था। सूर्य किरणें पृथ्वी पर से जल को अपने साथ लेकर सूर्य को चली जाती हैं फिर ऋत के सदन से नीचे आकर धृत से अर्थात् जल से भूमि को भिगो देती हैं।[77] जल मधुरता देने वाला तथा रोगों का निवारण करने वाला हैं।[78] आपः मूलतः पवित्र होते हैं।[79] 'आपः' मनुष्य के लिये अनेक प्रकार से रक्षा करने वाले हैं अतः तैत्तिरीय ब्राह्मण[80] में कहा गया है—"आपो वै रक्षोघ्नी।" जल वज्ररूप है—वज्रो वाऽआपः।[81] यह राक्षसों अर्थात् रोगों, पीड़ाओं आदि को समाप्त करने में बड़ा शक्तिशाली है। सब कामनाओं को पूर्ण करने वाला है[82] अर्थात् कृषि, अन्न, पुत्र, धन, दीर्घायु सभी कामनायें पूर्ण करने में समर्थ है।

पंचभूतों में से एक, पर्यावरण की महत्त्वपूर्ण घटक पृथिवी को ब्रह्माण्ड की वेदी कहा गया।[83] इस पर जड़ चेतन प्रतिष्ठित

ISSN 2348-3857

है अतः यह पृथिवी सब प्राणियों की आश्रया है।[84] पृथिवी धेनु है चूंकि धेनु की तरह मनुष्यों को सभी कामनाओं को पूरा करती है।[85] विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधो आदि से चित्रित होने के कारण पृश्नि है। ब्राह्मण काल तक कृषि संस्कृति का प्रकर्ष हो चुका था। शतपथ में उल्लेख है कि कृषि के सुषम होने पर ही यज्ञादि सम्भव थे अन्यथा पेट भरना भी कठिन हो जाता।[86] इस हेतु कृषि देवता क्षेत्रपति को मित्र वरुण तथा आदित्य जैसे देवों के साथ हवि देने का विधान प्रस्तुत किया। साथ ही अनृत मनुष्य को सभी के साथ सौहार्द्र से रहने तथा जनसंख्या पर नियंत्रण रखने को कहा गया चूंकि यदि खाने वाले कम हों और खाद्य पदार्थ अधिक हो, यही समृद्धि का रूप है।[87] इसी प्रकार मनुष्य को अपनी आवश्यकतानुसार ही भोजन करने को कहा गया क्योंकि आवश्यकतानुसार किये गये भोजन का अन्न पुष्टि करता है, हानि नहीं। अधिक होने पर हानि करता है, कम होने पर पुष्टि नहीं करता।[88] इस प्रकार ब्राह्मण ग्रंथ पर्यावरण के अजैविक कारकों के प्रति अपनी श्रद्धा दिखाते हैं तथा यज्ञों के माध्यम से पर्यावरण के इस सृष्टि यज्ञ को बल, ऊर्जा व पोषण प्रदान कर उससे प्रतिदान कामना पूरी करने की इच्छा रखते हैं।

ऋषियों के इस कर्मकाण्डीय यज्ञ में वृक्ष व पशु तत्त्व बड़े ही महत्वपूर्ण हैं। यज्ञ के अन्तर्गत लकड़ी, समिधा, यूप, कृष्णाजनिन चर्म, पशु प्रदत्त पदार्थ जैसे दूध, दही, घृत आदि तथा यज्ञ में हव्य हेतु बलि पशु, ये सब यज्ञ सम्पूर्ण व सफल करने के साधन हैं जो आवश्यक हैं। ब्राह्मण ग्रंथों के प्रणेता ऋषियों की दृष्टि में पर्यावरण के ये दो जैविक घटक अत्यन्त महत्वपूर्ण रहे। अश्वत्थ एवं पलाश ऐसे वृक्ष थे जिन पर देव व पितर निवास करते हैं।[89] अपामार्ग अर्क, अवका, उदुम्बर, कार्ष्मर्य, कुष, खदिर, तिल्वक, बिल्व, पलाश, न्यग्रोध आदि अनेक वृक्ष यज्ञ के उपकरण व यज्ञ विधि में काम आने वाले थे। कुछ वृक्ष यथा अश्वगंधा, अश्वत्थ, उषना, बदरी, पृष्निपर्णी आदि औषधि रूप में उपयोगी थे तथा आर्यों के दैनिक कार्यों व व्यवसाय हेतु इनका उपयोग था। यज्ञ हेतु जब वृक्ष काटा जाता था तो काटने वाला तक्षा (बढ़ई) उपकरण उठा कर वृक्ष को छूता था। फिर पश्चिम से पूर्व की ओर खड़ा होकर उसका अभिमन्त्रण करता था। वृक्ष की स्तुति के बाद यह प्रार्थना की जाती कि पशु हिंसा न करे। इस प्रार्थना के साथ कि वह हिंसा न करें, वह वृक्ष पर प्रहार करता है। वृक्ष को यहाँ तक काटता है कि वृक्ष का बचा भाग गाड़ी हेतु बाधा न हो। गिरते वृक्ष से प्रार्थना करता है कि वह आकाश को चोट न पहुँचाये। फिर वृक्ष की लकड़ी को यथेष्ट रूप देता है।[90] यजुर्वेद, वाजसनेयी संहिता, मनुस्मृति, चरक संहिता आदि सभी ग्रंथ वृक्षों को उपयोगी मानते हैं तथा वृक्षोच्छेदन अत्यन्त आवश्यकता पर ही करने का आग्रह करते हैं।

पशु, पक्षी, कीट व कृमि भी पर्यावरण के अभिन्न अंग है और मानव के चिर सहचर होने के साथ-साथ पारिस्थितिकी को प्रभावित भी करते हैं। शतपथ में कहा गया है कि प्रजापति ने इन्हें देखा (अपष्यत्) तथा इन्होंने प्रजापति को देखा, इसलिए इन्हें पशु विशेषण दिया गया।[91] पशु का अन्न से साम्य स्थापित किया गया।[92] उपयोगिता की दृष्टि से पशु को परम धन कहा गया। गाय अथवा गो धन की महत्ता सर्वोपरि थी। वह मनुष्य की सभी इच्छाओं को पूरा करती है तथा मानवों का भरणपोषण करती है।[93] सांड, बैल, अश्व, अज (बकरा), रासभ (गर्दभ), उष्ट्र, कुत्ता व कुक्कुट आदि ग्राम्य पशु थे, जिनका विविध उपयोगों की दृष्टि से विविध नामकरण किया गया। इनके अतिरिक्त ब्राह्मण ग्रन्थों में आरण्य पशुओं[94], पक्षियों[95], आदि का उल्लेख भी यत्र-तत्र मिलता है। अनेकों जलचरों का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में है। शलभ (टिड्डियाँ), मधुमक्खियाँ, चीटियाँ, चूहे, सर्प आदि का रोचक विवरण भी प्राप्त होता है।

यज्ञों के माध्यम से ब्राह्मण ग्रंथ के ऋषि सृष्टि के सभी घटकों, चाहे वे अजैविक हों या जैविक सभी की उपासना करते हैं तथा उनकी वृद्धि होने, मंगलकारी होने की कामना करते हैं। किन्तु यज्ञ बिना बलि के सम्पूर्ण नहीं होते और ऐसे में प्रश्न उठता है कि पर्यावरण चेतना से ओत-पोत ऋषि इस प्रकार की हिंसावृत्ति कैसे रख सकते थे? शतपथ ब्राह्मण के अनुसार "अध्वरौ वै यज्ञः" अर्थात् अध्वर ही यज्ञ है।[96] ध्वर धातु हिंसार्थक है। हिंसा का प्रतिषेध होने के कारण यज्ञ को अध्वर कहा जाता है।[97] डॉ. उर्मिला देवी शर्मा के अनुसार शतपथ के कथन "अध्वर वे यज्ञः" के दो अभिप्राय सम्भव है।[98] प्रथम, यज्ञ हिंसारहित होता है, तथा द्वितीय, हिंसा रहित यज्ञ ही वास्तविक यज्ञ है अन्य नहीं। इसमें द्वितीय अर्थ ही अभिप्रेत होता है। एक ओर यज्ञ में बलि दिये जाने के अनेकों उल्लेख प्राप्त होना तथा दूसरी ओर हिंसा रहित यज्ञ को ही वास्तविक यज्ञ मानना दो भिन्न स्तर की नैतिकताओं की विसंगति है जिसकी गवेषणा की जानी चाहिए।

विशेषण रूप में पशु पाँच हैं—अश्व, गौ, अवि, अज तथा मनुष्य[99] जिन्हें यज्ञीय पशु माना गया। प्रजापति ने इन्हें देखा (अपष्यत्) अतः ये पशु कहलाये। इनमें देवों ने सर्वप्रथम पुरुष पशु का आलभन किया। आलभन शब्द का सामान्य अर्थ भी हिंसात्मक रूप से ही लिया जाता है। और यज्ञों में आया 'मेघ' शब्द को भी हिंसात्मक कर्म के रूप में प्रयुक्त माना जाता हैं। वैदिक साहित्य में ही यज्ञ के लिये आया हुआ अन्य शब्द 'अध्वर' (हिंसा रहित कर्म) है तो यज्ञ हिंसा का समर्थक कैसे हो सकता है?

'मेघ' की अवधारणा—मेघ का अर्थ होता है "मेधा हिंसानयोः संगमेव अर्थात् मेधा संवर्धन, हिंसा एवं एकीकरण संगतिकरण।" मेध शब्द यज्ञ का ही पर्यायवाची है। इसका एक अर्थ 'वध' भी होता है पर 'अध्वर' के नाते हिंसा परक अर्थ छोड़ देने पर अर्थ हो जाता है मेधा संवर्धन, हिंसा एवं एकीकरण संगतिकरण जो यज्ञ और वेदों की गरिमा के अनुरूप अर्थ है। द्वेष, प्राणिहिंसा, क्रूरता आदि को शास्त्रों में 'अयज्ञीय' कहा है। अस्तु, यज्ञीय संदर्भ में इसका प्रयोग इस प्रकार नहीं किया जा सकता। मेध शब्द की व्युत्पति में उसे मिथ, मिद्, मेद आदि धातुओं से सम्बद्ध माना गया जिसका अर्थ मिलन, जोड़ना, जानना, प्रेम करना, पकड़ना होता है। मेध के अर्थ बुद्धि, शक्ति, बल, यज्ञ आदि कहे गये हैं। इसे यज्ञ, अर्पण, रस, पूज्य, सार, पवित्र आदि अर्थों में भी प्रयुक्त किया जाता है। वाजसनेयी संहिता[100] में मेध का अर्थ उपयुक्त संदर्भों में ही किये जाने का आग्रह भाष्यकारों ने किया है।

'आलभन' पर विमर्श—'आलभन' का भी हिंसात्मक रूप से ही अर्थ लगाया जाता है। यजुर्वेद में 'आलभते' शब्द प्रयोग में आता है जिसका अर्थ यदि 'वध' निकाला जाये तो युक्ति संगत नहीं लगता, यथा—

"ब्राह्मणे ब्राह्मणं आलभेत
क्षत्राय राजरूयं आलभेत"[101]

हिंसा परक अर्थ करने पर इसका अर्थ होता है—ब्राह्मणत्व के लिये ब्राह्मण का वध करें और क्षात्रत्व हेतु क्षत्रिय का वध करें, जो कभी भी विवेकसंगत नहीं कहा जा सकता। इसका तात्पर्य निकलता है ब्राह्मणत्व के लिये ब्राह्मण और शौर्य हेतु क्षत्रिय की संगति करें (प्राप्त करें, स्पर्ष करें)। 'आङ' पूर्वक 'लभ' धातु से निष्पन्न इस शब्द का अर्थ 'स्पर्श' करना होता है। यथा—

"वत्सस्य समीप आनयनार्थम्
आलम्भः स्पर्शो भवतीति।"

यहाँ आलम्भ धातु का अर्थ स्पर्श करना ही किया गया है। अतएव यज्ञीय कर्मों में इसका हिंसात्मक प्रयोग करना अविवेकपूर्ण है। यज्ञ में प्राणिहिंसा की बात शास्त्रानुमोदित नहीं हो सकती। निरूक्त[102] कहता है, "अध्वर इति यज्ञनामध्वरतिहिंसाकर्मा तत्प्रतिषेधः।" 'अध्वर' यह यज्ञ का नाम है, जिसका अर्थ हिंसा रहित कर्म होता है।

इसी प्रकार ऋग्वेद[103] में कहा गया है कि हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर! तू हिंसारहित यज्ञों में ही व्याप्त होता है और ऐसे यज्ञों को ही सत्यनिष्ठ विद्वान् लोग स्वीकार करते हैं। इसी प्रकार परमेश्वर को अध्वरों अर्थात् हिंसारहित सब कर्मों में विराजमान बताया गया है।[104]

वैदिक साहित्य में अश्वमेध यज्ञ में अश्व की बलि दे दिये जाने सम्बन्धी विचार भी प्राप्त होते हैं पर आचार्य पंडित श्रीराम शर्मा अश्व शब्द के विवेचन पर ध्यान आकर्षित करते हैं। अष्ङक्वन—अश्नुते अध्वानम् अश्नुते व्याप्नोति। अर्थात् तीव्रगति वाला, मार्ग पर व्याप्त हो जाने वाला। इन्हीं गुणों के कारण घोड़े को अश्व कहा गया है। शास्त्रों द्वारा अश्व को गुणवाचक सम्बोधन के रूप में ही लिया गया है—

इंद्रो वै अश्व।[105] इन्द्र ही अश्व है।

सौर्यो वा अश्वः।[106] सूर्य का सूर्यत्व ही (तेज) अश्व है।

अश्व सूर्य का प्रतीक है। वसुओं ने यज्ञीय अश्व को (अग्नि को) सूर्य से प्रकट किया है। शतपथ ब्राह्मण[107] की व्याख्या में स्वामी दयानंद कहते हैं—सारे संसार में संचरित होकर संव्याप्त होने वाला अश्व 'ईश्वर' है।

इन उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि अश्वमेध में प्रयुक्त अश्व का अर्थ केवल घोड़ा मान लेना उचित नहीं है। पशु का एक अर्थ है देखने वाला। परमात्मा सबको देखने वाला है। उसने सृष्टि को देखा तथा उसे सक्रिय करने के लिये स्वयम् को प्राणरूप में प्रत्येक घटक के साथ आबद्ध किया। यही प्राण सर्वत्र व्याप्त हो उठा, इसलिए 'अषु व्यापनोति' के अनुसार वह अश्व भी कहलाया। जिस प्रकार आहुति यज्ञाग्नि के साथ एकाकार हो जाती है, उसी प्रकार, यह प्राण चेतना सृष्टि के विभिन्न घटकों के साथ एकरूप हो गई। यह यज्ञीय प्रक्रिया 'मेध' कहलाई। इस प्रकार सृष्टि में प्राण संचार की प्रक्रिया को प्रजापति द्वारा किया गया प्रथम अश्वमेध कहा गया।

'देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरूषं पशुम्।'[108]

देव जिस यज्ञ का विस्तार कर रहे थे, उससे यज्ञ पुरुष ही पशुरूप में सम्बद्ध हुआ। केनोपनिषद् पर अपने भाष्य में श्री आरबिन्दों ने प्राण को अश्व की संज्ञा दी है। इस प्रकार 'अश्व' गतिशीलता का, शौर्य का, पराक्रम का और मेघ मेधाशक्ति, श्रेष्ठ बुद्धिमत्ता का प्रतीक होने से अश्वमेध का सहज अर्थ होता है—शौर्य, पराक्रम तथा कल्याणकारी मेधाशक्ति का संयोग।[109] शतपथ ब्राह्मण कहता है—राष्ट्रं वाऽअश्वमेधः[110] अर्थात् राष्ट्र (का गठन) ही अश्वमेध है। शतपथ ब्राह्मण में इस प्रकार के कई प्रतीकात्मक विवरण मिलते है—[111] जब यज्ञ का सिर काट दिया गया तो उसका रस बह कर जलों में मिल गया। इसी रस के कारण ये जल आज तक बहते हैं। निश्चित रूप से इसे प्रतीकात्मक समझना ही अपेक्षित है। यज्ञ परम्पराओं से सम्पन्न उस युग में यह भी सम्भव है कि हिंसक प्रवृति के लोग पशुओं की वास्तविक बलियाँ भी देते रहे हों किन्तु शतपथ[112] ब्राह्मण में प्रतीकात्मकता के उदाहरण अधिक मिलने से प्रतीत होता है कि वास्तविक बलियों की सम्भावना दिन प्रतिदिन कम होती जा रही थी। मुण्डक उपनिषद् में यज्ञ व कर्मकाण्ड को निकृष्ट साधन (टूटी हुई नौका) एवं पुनर्जन्म का कारण बताया है।[113] यज्ञों में जीव अहिंसा का प्रतिपादन प्राकृतिक सन्तुलन की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। इसी प्रकार पुरुषमेध को मानव शरीर के बलिदान हेतु समझा गया। किंतु बलि का अर्थ था पुरुष के भौतिक सम्पति और संचित अहंकार का त्याग जिसे यज्ञ की पवित्र अग्नि में भस्म करना है।[114]

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि यज्ञ की प्रणाली के पीछे त्याग का विचार मूल में था। यज्ञ में मंत्रोच्चारण, विशेष प्रकार की समिधाएं, चरु, पुरोडाश व यज्ञकर्ता की भावनाओं के प्रवाह आदि अनेक सूक्ष्म प्रक्रियाओं से एक वातावरण बनता है जिससे प्राकृतिक व सामाजिक पर्यावरण को लाभ होता है। यज्ञ मानव और समाज, मनुष्य और प्रकृति, आत्मा और ब्रह्म के मध्य एक संतुलित सामंजस्य की ओर ले जाते हैं। यज्ञ पर्यावरण और पारिस्थितिकी के संतुलन को बनाये रखने में समर्थ थे और हैं। वर्तमान विश्व के परिदृश्य में इनके महत्व को समझा जा सकता है जब सम्पूर्ण विश्व युद्धों की विभीषिका से त्रस्त है ऐसे में यज्ञ शांतिपूर्ण सह अस्तित्व के दर्शन को प्रतिपादित करते हैं जिनके माध्यम से पारिस्थितिकी प्रणाली और मानव जीवन के मध्य सद्भाव, सामाजिक समरसता और लोक कल्याण भावना में संवर्धन, संतुलन व सामंजस्य सम्भव हो सकता है।

संदर्भ सूची

1. पथिक, प्रतिष्ठा, प्राचीन भारत में यज्ञ पर ऐतिहासिक और दार्शनिक व्याख्या, इंटर डीस्सिप्लिनारी जर्नल ऑफ़ यज्ञ रिसर्च, वोल. 2 न. 1, 2019
2. देवा असुरानभ्यवर्तयन्—अथर्ववेद 12.1.5
3. शतपथ ब्राह्मण 1.1.3.6
4. वही 1.2.1.6
5. यज्ञों वै श्रेष्ठतमं कर्म—शतपथ ब्राह्मण 1.7.1.5
6. यज्ञोऽपि तस्यै जनतायै कल्पते—ऐतरेय ब्राह्मण 1.2.3
7. देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे—यजुर्वेद 3.50
8. कठोपनिषद् 1.2.16
9. तैत्तरीय ब्राह्मण 3.2.3
10. भगवद् गीता 3.14
11. शतपथ ब्राह्मण 1.7.1.9, ऐतरेय ब्राह्मण 1.5
12. ऋग्वेद 10.130.1
13. निरूक्त, 3.4
14. शतपथ ब्राह्मण 11.2.7.32
15. गोपथ ब्राह्मण 1.5.25
16. स एष यज्ञः पंचविधः—अग्निहोत्रम्, दर्षपूर्णमासौ, चातुर्मास्यानि, पशुः सोमः इति।
17. मनु, 3.68.69
18. शतपथ ब्राह्मण 11.5.5.1, तैत्तरीय आरण्यक 2.10
19. मनु, 3.70
20. छान्दोग्य उपनिषद् 3.16
21. यजुर्वेद 18.9
22. ऐतरेय ब्ा्रह्मण 1.4.3
23. षड़्विंष ब्राह्मण 3.1.3
24. शतपथ ब्राह्मण 2.3.1.6
25. कौषीतकि ब्राह्मण 18.7
26. यजुर्वेद 1.5
27. मनु, 4.236, 237
28. शतपथ ब्राह्मण 3.2.2.19
29. अथर्ववेद 1.15.2

30. शर्मा, डॉ उर्मिला देवी, शतपथ ब्राह्मण—एक सांस्कृतिक अध्ययन, मेहरचन्द लक्ष्मनदास पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1982, पृ.सं. 69
31. अथर्ववेद 20.95.6, ऋग्वेद 10.44.6
32. ऐतरेय ब्राह्मण 1.2.1
33. सिंघवी, डॉ. नन्दिता, वेदों में पर्यावरण चेतना, सोनाली पब्लिकेशंस, जयपुर, 2004 पृ.सं. 96
34. मनु 3.76
35. तैत्तरीय उपनिषद्, भृगुवल्ली, नवम् अनुवाक
36. वही, सप्तम् अनुवाक
37. ऐतरेय ब्राह्मण 1.17.5
38. डॉ. उर्वी, यज्ञ से कृषि को लाभ, संस्कृत वाङ्मये विज्ञानम्, पृ.सं. 234
39. यजुर्वेद, 12.68
40. कौषीतकी ब्राह्मण 5.1, गोपथ ब्राह्मण 2.1.19, भगवद् गीता 3.13
41. पाण्डे, गोविन्दचन्द्रः वैदिक संस्कृति, लोक भारती प्रकाषन, इलाहाबाद, 2001, पृ.सं. 373
42. ट्रिलवर्ट महोदय का मानना है कि जलती हुई शक्कर में वायु शुद्ध करने की शक्ति है जिससे क्षय, चेचक, हैजा आदि बीमारियाँ तुरन्त नष्ट होती हैं। उद्धृत, कमलकान्त पाठक, संस्कृत वाङ्मय में पर्यावरण चेतना, सं मोतीलाल जोशी, पृ.सं. 133
43. डॉ. हैफकिन ने प्रतिपादित किया कि घृतयुक्त शक्कर के अग्नि में दहन से रोगाणु मरते हैं तथा हमारा स्वरयंत्र, नाड़ी तंत्र, हृदय व मस्तिष्क सुख से परिपूर्ण होता है। उद्धृत वही, पृ.सं. 133
44. वही, पृ.सं. 134.
45. वही
46. सरस्वती, स्वामी दयानन्द, सत्यार्थ प्रकाश, एकादश सम्मुलास, पृ.सं. 382
47. पाठक, कमलकान्त, संस्कृत वाङ्मय में पर्यावरण चेतना, पृ.सं. 131
48. वही, पृ.सं. 133
49. वृहदारण्यकोपनिषद् 1.2.3, शतपथ ब्राह्मण 11.2.3.1
50. शतपथ ब्राह्मण 9.1.1.23
51. प्राणा अग्नि, शतपथ ब्राह्मण 6.31.1.21; वातः प्राणः, ऐतरेय ब्राह्मण 2.34; असावादित्यः प्राणः, तैत्तरीय संहिता 5.2.5.4.
52. शतपथ ब्राह्मण 9.2.2.2
53. वही 2.2.42, 6.1.2.28
54. वही 1.2.1.4
55. वही 6.4.3.4
56. वही, 8.1.1.7
57. वही 6.2.2.11
58. जैमिनीय ब्राह्मण 3.337
59. ऐतरेय ब्राह्मण 2.34; शतपथ ब्राह्मण 8.4.1.8
60. शतपथ ब्राह्मण 3.1.3.20
61. वृहदारण्यकोपनिषद् 3.6.1
62. शतपथ ब्राह्मण 2.6.3.7
63. वही 8.7.2.14
64. अथर्ववेद 2.20.4
65. शतपथ ब्राह्मण 3.1.3.3
66. वही 3.9.2.12
67. वही 2.2.3.9
68. तैत्तिरीय ब्राह्मण 2.2.10.4
69. वही 3.10.8.5
70. शतपथ ब्राह्मण 3.9.2.12
71. अथर्ववेद 13.2.34
72. ऋग्वेद 1.164.8; मनु 3.16
73. शतपथ ब्राह्मण 1.9.3.7, 4.4.3.15; कौषीतकी ब्राह्मण 12.1
74. ऐतरेय ब्राह्मण 2.16
75. कौषीतकी ब्राह्मण 12.2
76. शतपथ ब्राह्मण 2.2.3.7
77. अथर्ववेद 9.10.22
78. ऋग्वेद 1.23.19; अथर्ववेद 1.4.4
79. शतपथ ब्राह्मण 1.1.1.1; 3.1.2.10
80. तैत्तरीय ब्राह्मण 3.2.3.12; 3.2.4.2; 3.2.9.14
81. शतपथ ब्राह्मण, 1.1.1.17; 3.1.2.6; 7.5.2.41
82. आपो वै सर्वे कामाः—शतपथ ब्राह्मण 10.5.4.15
83. शतपथ ब्राह्मण 7.3.1.15
84. यजुर्वेद 26.1
85. शतपथ ब्राह्मण 2.2.2.21
86. वही 3.2.1.30

87. वही 1.3.2.12
88. वही 6.6.3.17
89. वही 13.8.3.1
90. शतपथ ब्राह्मण 3.6.4 में वर्णित यूप निर्माण विधि, उद्धृत पाण्ड़े, गोविन्द्रचन्द, वैदिक संस्कृति, पृ. 388
91. शतपथ ब्राह्मण 6.2.1.2
92. अन्नं पशवः—शतपथ ब्राह्मण 8.3.2.10
93. वही 5.3.1.4
94. आरण्य पशुओं में रीछ, सिंह, व्याध्र, वृक, श्रृगााल, जुम्बक, वराह, हस्ती, मयु (वनमानुष), मृग, शरभ आदि उल्लेखनीय हैं।
95. कपिंजल, कलविंक, तित्तिरि, कंक, श्येन, शकुनि, हंस आदि पक्षियों का उल्लेख प्राप्त होता है।
96. शतपथ ब्राह्मण 3.5.3.17
97. निरूक्त 1.3
98. शतपथ ब्राह्मण—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 76
99. शतपथ ब्राह्मण 2.8.4.16; 10.2.1.1
100. वाजसनेयी संहिता 32—सर्वमेघ प्रकरण
101. यजुर्वेद 30.5
102. निरूक्त 2.7
103. ऋग्वेद 1.1.4
104. वही 1.1.8
105. कौषीतकी ब्राह्मण 15.4
106. गोपथ ब्राह्मण (उ. 3/19)
107. शतपथ ब्राह्मण 13.3.3.5
108. यजुर्वेद 31.15
109. महर्षि अरविंद के उपनिषद् भाष्यों, दि सीक्रेट ऑफ दि वेदा, हाइम्स टू दि मिस्टिक फायर, के विश्लेषण पर आधारित
110. शतपथ ब्राह्मण 13.1.6.3
111. वही 3.9.2.1
112. शतपथ ब्राह्मण 5.1.1.12; 5.2.3.1; 5.4.3.1
113. मुण्डक उपनिषद् 1.2.7
114. शर्मा, बी, संपादक, अखंड ज्योति, मथुरा। भारतः अखंड ज्योति संस्थान 1992; 11ः पृ.सं. 56-57